चतुर्विंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में सांगोपांगों के संग

प्रथम परिच्छेद

(भक्त के लिए श्रीरामकृष्ण का देह-धारण)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में रह रहे हैं। सन्ध्या हो गई है। ठाकुर अस्वस्थ हैं। ऊपर के हाल कमरे में उत्तरास्य हुए बैठे हैं। नरेन्द्र और राखाल दोनों जन पदसेवा कर रहे हैं। मणि पास बैठे हैं। ठाकुर ने इंगित से उनसे भी पदसेवा करने के लिए कहा। मणि पदसेवा कर रहे हैं।

आज रविवार, 14 मार्च, 1886; 2रा चैत्र, फाल्गुन शुक्ला नवमी। गत रविवार को ठाकुर की जन्मतिथि के उपलक्ष्य में बागान में पूजा हो गई थी। गत वर्ष जन्ममहोत्सव दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में खूब समारोह से हुआ था। अब की बार वे अस्वस्थ हैं। भक्तगण विषादसागर में डूबे हुए हैं। पूजा हुई। नाममात्र उत्सव हुआ।

भक्तगण सर्वदा ही बागान में उपस्थित रहते हैं और ठाकुर की सेवा कर रहे हैं। श्री श्रीमाँ उसी सेवा में निशिदिन नियुक्त हैं। छोकरे भक्त अनेक ही सर्वदा रहते हैं— नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरत्, शशी, बाबूराम, योगीन, काली, लाटु प्रभृति।

वयस्क भक्तगण बीच-बीच में रहते हैं और प्राय: नित्य आकर ठाकुर का दर्शन करते हैं या संवाद लेकर जाते हैं। तारक, सींथी का गोपाल, ये भी सर्वदा रहते हैं। छोटे गोपाल भी रहते हैं।

ठाकुर आज भी विशेष अस्वस्थ हैं। रात्रि दो प्रहर। आज शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि, चाँद के आलोक से उद्यानभूमि जैसे आनन्दमय हो रही है। ठाकुर को कठिन पीड़ा— चन्द्र की विमल किरण-दर्शन से भक्तहृदयों में आनन्द नहीं है। जैसे एक नगरी में सब ही सुन्दर है, किन्तु शत्रु-सेना ने घेरा डाल रखा है। चारों ओर निस्तब्ध, केवल वसन्त-अनिल के स्पर्श से वृक्षपत्रों का शब्द हो रहा है। ऊपर के हाल कमरे में ठाकुर लेटे हुए हैं। बड़ा कष्ट है, निद्रा नहीं। दो-एक भक्त चुपचाप पास बैठे हुए हैं— कभी कुछ काम पड़ जाए! एक-एक बार तन्द्रा आ रही है और ठाकुर प्राय: निद्रित बोध हो रहे हैं।

यह क्या निद्रा है या महायोग? 'यस्मिन् स्थितो न दु:खेन गुरुणापि विचाल्यते!'* यह क्या वही योगावस्था है?

मास्टर निकट बैठे हैं। ठाकुर इंगित से और निकट आने को कह रहे हैं। ठाकुर का कष्ट देखकर तो पाषाण भी विगलित हो जाता है। मास्टर से धीरे-धीरे अति कष्ट से कह रहे हैं—

''तुम लोग रोओगे, इसलिए इतना भोग रहा हूँ— सब ही यदि कहें कि इतना 'कष्ट है तो फिर देह जाए'— तब फिर देह जाएगी!''

यह बात सुनकर भक्तों का हृदय विदीर्ण हो रहा है। जो उनके पिता, माता, रक्षाकर्त्ता हैं वे ही यह बात कह रहे हैं! सब चुप हैं। कोई विचार कर रहे हैं, इसका ही नाम है crucifixion! (क्रूसीफिक्शन)— भक्तों के लिए देहविसर्जन!

गम्भीर रात्रि। ठाकुर का रोग जैसे और भी बढ़ रहा है। क्या उपाय किया जाए? कलकत्ता व्यक्ति भेजा गया। श्रीयुक्त उपेन्द्र डॉक्टर और श्रीयुक्त नवगोपाल कविराज को साथ लेकर गिरीश उसी गम्भीर रात में आए।

भक्तगण निकट बैठे हुए हैं। ठाकुर तनिक स्वस्थ हो रहे हैं। कह रहे हैं,

''देह का असुख, वह तो होगा ही। देख रहा हूँ पंचभूत की देह है!''

---

* गीता 6 : 22

गिरीश की ओर देखते हुए कह रहे हैं,—

"अनेक ईश्वरीय रूप देख रहा हूँ। उसमें यह रूप भी (अपनी मूर्ति) देख रहा हूँ।"

द्वितीय परिच्छेद

(समाधिमन्दिर में)

अगला दिन प्रातः। आज सोमवार, 3रा चैत्र, 15 मार्च, 1886 ईसवी। समय 7-8 का होगा। ठाकुर तनिक सम्भले हैं और भक्तों के साथ आहिस्ते-आहिस्ते, कभी-कभी इशारा करके बातें कर रहे हैं। पास नरेन्द्र, राखाल, मास्टर, लाटु, सींथी के गोपाल प्रभृति हैं।

भक्तों के मुख में बात नहीं, ठाकुर की पूर्वरात्रि की देह की अवस्था स्मरण करके वे लोग विषाद-गम्भीर मुख से चुपचाप बैठे हुए हैं।

(ठाकुर का दर्शन— ईश्वर, जीव, जगत)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर की ओर ताकते हुए, भक्तों के प्रति)*— क्या देख रहा हूँ, जानते हो? वे सब हुए हैं! मनुष्य और जो जीव देख रहा हूँ, जैसे सब चमड़े से तैयार हुए हैं— उसके भीतर से वे ही हाथ, पाँव, सिर हिला रहे हैं! जैसे एक बार देखा था— मोम की बाड़ी, बाग, रास्ता, मनुष्य, गाय सब मोम के— सब एक वस्तु से बने हुए।

"देख रहा हूँ— वे ही लुहार, वे ही बलि, वे ही बलिकाष्ठ (हाड़िकाठ)* हुए हैं!"

ठाकुर क्या बता रहे हैं, जीव के दुःख में कातर होकर वे अपने शरीर को

---

* हाड़िकाठ = देवता के ठीक सामने की ओर ज़मीन में गड़ा हुआ बलिकाष्ठ जिसके ऊपर का अंश तीन-चार इंच चीरा हुआ रहता है और जिसमें गर्दन फँसाकर बलि का पशु काटा जाता है।

जीव के मंगल के लिए बलिदान कर रहे हैं?

ईश्वर ही लुहार, बलि, बलिकाष्ठ बने हुए हैं। यह बात बोलते-बोलते ठाकुर भाव में विभोर होकर बोल रहे हैं— ''आहा! आहा!''

और फिर वही भावावस्था! ठाकुर बाह्यशून्य हो रहे हैं। भक्तगण किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुए चुप किए बैठे हुए हैं।

ठाकुर थोड़ा-सा प्रकृतिस्थ होकर बोल रहे हैं—

''अब मुझे कोई भी कष्ट नहीं, ठीक पूर्वावस्था है।''

ठाकुर की यह सुख-दुःख अतीत अवस्था देखकर भक्तगण अवाक् हो गए हैं। लाटू की ओर ताकते हुए फिर बोल रहे हैं—

''वह लाटो— माथे पर हाथ रखकर बैठा हुआ है— जैसे वे ही (ईश्वर ही) माथे के ऊपर हाथ रखे हुए हैं!''

ठाकुर भक्तों को देख रहे हैं और स्नेह में जैसे विगलित हो रहे हैं। जैसे शिशु को प्यार करते हैं, उसी प्रकार राखाल और नरेन्द्र को प्यार कर रहे है! उनके मुख पर हाथ फेर कर प्यार कर रहे हैं!

(क्यों लीला-संवरण)

कुछ देर बाद मास्टर से कह रहे हैं,

''यह शरीर कुछ दिन रहता, तो लोगों को चैतन्य होता।''

ठाकुर फिर दोबारा चुप हैं।

ठाकुर फिर और बोल रहे हैं—

''वह रखेगा नहीं।''

भक्त सोच रहे हैं, ठाकुर फिर और क्या कहेंगे। ठाकुर फिर और कह रहे हैं,

''वह रखेगा नहीं— सरल मूर्ख देखकर पीछे लोग सब पकड़ लें! सरल मूर्ख है, कहीं पीछे सब दे डाले! एक तो कलि में ध्यान-जप नहीं है।''

राखाल *(सस्नेह)*— आप कहिए— जिससे आपकी देह रहे।

श्रीरामकृष्ण—वह ईश्वर की इच्छा है।
नरेन्द्र— आपकी इच्छा और ईश्वर की इच्छा एक हो गई है।

ठाकुर चुप किए हुए हैं— जैसे कुछ सोच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र, राखाल आदि भक्तों के प्रति)*— फिर कहने से ही कहाँ होता है?

''अब देख रहा हूँ एक हो गया है। ननदिनी के भय से कृष्ण को श्रीमती ने कहा 'तुम हृदय के भीतर रहो।' जब फिर व्याकुल होकर कृष्ण के दर्शन करना चाहा— ऐसी व्याकुलता— जैसे बिलाव का पंजों से खरोचना, तब किन्तु फिर बाहर नहीं आता।''

राखाल *(भक्तों के प्रति, मृदु स्वर में)*— ये गौर अवतार की बात बतला रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(गुह्य कथा— ठाकुर श्रीरामकृष्ण और उनके सांगोपांग)

भक्तगण निस्तब्ध हुए बैठे हैं। ठाकुर भक्तों को सस्नेह देख रहे हैं, अपने हृदय पर हाथ रख लिया— क्या बोलेंगे!

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि से)*— इसके भीतर दोनों हैं। एक तो वे।

भक्तगण प्रतीक्षा कर रहे हैं— और क्या कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— एक तो वे हैं— और एक भक्त हुए हैं। उसका हाथ टूट गया था— उसको ही असुख हुआ है। समझे?

भक्तगण चुप किए बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण— किसको ही फिर कहूँ या कौन ही फिर समझेगा?

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर फिर और बातें कह रहे हैं—

''वे मनुष्य होकर— अवतार होकर— भक्तों के संग में आते हैं। भक्तगण

उनके संग में ही फिर चले जाते हैं।''

राखाल— अभी हम लोगों को आप जैसे छोड़ कर मत जाएँ।

ठाकुर मृदु-मृदु हँसते हैं। कह रहे हैं, ''बाउलों का दल हठात् आ गया— नाचा, गाना गाया; और फिर हठात् चला गया! आया-गया, किसी ने पहचाना नहीं। *(ठाकुर का और सबका ईषत् हास्य)*।

कुछ क्षण चुप रहकर ठाकुर फिर और बोल रहे हैं—

''देह धारण करने से कष्ट तो है ही।

''एक-एक बार कहता हूँ, जैसे और आना न हो।

''तो भी फिर एक बात तो है। निमन्त्रण (दावत) खा-खाकर घर के उड़द के दाल-भात अच्छे नहीं लगते।

''और जो देह-धारण करना है— यह भी भक्त के लिए है।''

ठाकुर भक्त का नैवेद्य— भक्त का निमन्त्रण—भक्तसंग-विहार पसन्द करते हैं, क्या यही बात बता रहे हैं?

(सुरेन्द्र का ज्ञान-भक्ति— नरेन्द्र का संसार-त्याग)

ठाकुर नरेन्द्र को सस्नेह देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— चण्डाल मांस का भार लिए जा रहा था। शंकराचार्य गंगा नहा कर पास से जा रहे थे। चण्डाल ने हठात् उन्हें छू लिया। शंकर नाराज़ होकर बोले, तूने मुझे छू लिया है। वह बोला, भगवन्, तुमने भी मुझे नहीं छुआ! मैंने भी तुम्हें नहीं छुआ! तुम विचार करो! तुम क्या देह, तुम क्या मन, तुम क्या बुद्धि हो; तुम क्या हो, विचार करो। शुद्ध आत्मा निर्लिप्त है— सत्त्व, रज, तम; तीन गुण हैं— किसी भी गुण में लिप्त नहीं।

''ब्रह्म किस प्रकार का है, जानते हो? जैसे वायु। दुर्गन्ध, सुगन्ध— सब वायु में हैं, किन्तु वायु निर्लिप्त है।''

नरेन्द्र— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— गुणातीत। मायातीत। अविद्या-माया, विद्या-माया— दोनों के ही अतीत। कामिनी-काञ्चन अविद्या है। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति— यह सब विद्या का ऐश्वर्य है। शंकराचार्य ने विद्या-माया रखी थी। तुम और ये लोग जो मेरे लिए भावना करते हो, यही भावना विद्या-माया है!

''विद्या-माया पकड़ते-पकड़ते ब्रह्मज्ञान-लाभ हो जाता है। जैसे सीढ़ियों के ऊपर का डण्डा— उसके पश्चात् छत। कोई-कोई छत के ऊपर पहुँचने के बाद भी सीढ़ियों से आना-जाना करता है— ज्ञान-लाभ के बाद भी 'विद्या का मैं' रखता है, लोकशिक्षा के लिए। और फिर भक्ति-आस्वादन करने के लिए— भक्त के संग विलास करने के लिए।''

नरेन्द्रादि भक्त चुप किए हुए हैं। ठाकुर क्या यह समस्त निजी अवस्था बतला रहे हैं?

नरेन्द्र— कोई-कोई मेरे ऊपर क्रोध करता है, त्याग करने की बात पर।

श्रीरामकृष्ण *(मृदु स्वर में)*— त्याग दरकार है।

ठाकुर अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग दिखलाकर कह रहे हैं—

''एक वस्तु के ऊपर यदि और एक वस्तु रहे, तो प्रथम वस्तु को पाने के लिए, उस वस्तु को हटाना होगा ना? एक को बिना हटाए और एक क्या मिलती है?

नरेन्द्र— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र से, मृदु स्वर में)*— उसी (ईश्वर)-मय के देख लेने पर और कुछ क्या दिखाई देता है?

नरेन्द्र— संसार-त्याग करना ही होगा?

श्रीरामकृष्ण— जो कहता हूँ उसी (ईश्वर)-मय के देख लेने पर क्या और कुछ दिखता है? संसार-वंसार और कुछ दिखाई देता है?

''किन्तु मन में त्याग। यहाँ पर जो आते हैं, कोई संसारी नहीं। किसी-किसी की थोड़ी-सी इच्छा थी— स्त्रियों के संग रहना *(राखाल, मास्टर प्रभृति का ईषत् हास्य)*। वह इच्छा भी हो गई।''

(नरेन्द्र और वीरभाव)

ठाकुर नरेन्द्र को सस्नेह देख रहे हैं। देखते-देखते जैसे आनन्द में परिपूर्ण हो रहे हैं। भक्तों की ओर ताकते हुए कह रहे हैं—

'खूब'!

नरेन्द्र ठाकुर को सहास्य कह रहे हैं,

'खूब' क्या?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— खूब त्याग हो रहा है।

नरेन्द्र और भक्तगण चुप किए हुए हैं और ठाकुर को देख रहे हैं। अब राखाल बातें कर रहे हैं।

राखाल *(ठाकुर से, सहास्य)*— नरेन्द्र आपको खूब समझता है।

ठाकुर हँस रहे हैं और कह रहे हैं—

"हाँ, और भी देख रहा हूँ, अनेक समझते हैं। *(मास्टर के प्रति)*— क्या नहीं जी?"

मास्टर— जी हाँ।

ठाकुर नरेन्द्र और मणि को देख रहे हैं और हाथ के द्वारा इंगित करके राखाल आदि भक्तों को दिखला रहे हैं। प्रथम इंगित करके नरेन्द्र को दिखाया— तत्पश्चात् मणि को दिखाया! राखाल ठाकुर के इंगित को समझ गए हैं और बातें कर रहे हैं।

राखाल *(सहास्य, श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— आप कह रहे हैं कि नरेन्द्र का वीरभाव है? और इनका (मास्टर का) सखी भाव? *(ठाकुर हँस रहे हैं)*।

नरेन्द्र *(सहास्य)*— ये (मास्टर) अधिक बातें नहीं करते, और लाजुक (लज्जाशील) हैं; तभी शायद आप ऐसा कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, नरेन्द्र से)*— अच्छा, मेरा क्या भाव है?

नरेन्द्र— वीरभाव, सखीभाव— सब भाव।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— वे कौन ?)

ठाकुर यह बात सुनकर जैसे भाव में पूर्ण हो गए हैं, हृदय पर हाथ रख कर क्या कुछ कहते हैं !

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि भक्तों से)*— देख रहा हूँ इसके भीतर से ही है जो कुछ है।

नरेन्द्र से इंगित करके पूछ रहे हैं,
''क्या समझा ?''

नरेन्द्र— (''जो कुछ'' अर्थात्) जो सृष्ट पदार्थ, सब आपके भीतर से !

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के प्रति आनन्द से)*— देखा !

ठाकुर नरेन्द्र से एक गाना गाने के लिए कह रहे हैं। नरेन्द्र सुर से गा रहे हैं। नरेन्द्र का त्याग का भाव है— गा रहे हैं—

''नलिनीदलगतजलमतितरलम् तद्वज्जीवनमतिशयचपलम्
क्षणमिह, सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका।''

[भावार्थ— कमलों के दल जैसे जल में चञ्चल रहते हैं वैसे ही जीवन अतिशय चपल है। एक क्षण के लिए भी सज्जन की संगति संसार-समुद्र को पार करने वाली नौका हो जाती है।]

दो-एक चरण गाने पर ही ठाकुर नरेन्द्र को इंगित करके कह रहे हैं,
''वह क्या ! वह क्या ! वह तो अति सामान्य भाव है !''

नरेन्द्र अब सखी-भाव का गाना गा रहे हैं—

काहे सइ जियत मरत कि विधान !
ब्रज का किशोर सइ कहाँ गेलो भागइ, ब्रजजन टुटायलो पराण॥
मिलि सइ नागरी, भूलि गई माधव, रूपविहीन गोपकुँआरी।
को जाने पिय सइ, रसमय प्रेमिक हेनो बन्धु रूप कि भिखारी॥
आगे नाहिं बुझनु, रूप हेरि भुलनु, हृदि कैनु चरण युगल।
यमुना सलिले सइ, अब तनु डारबो, आन सखी भखिबो गरल॥
(किवा) कानन बल्लरी, गल बेढ़ि बांधई,

नवीन तमाले दिवो फाँस।
नहे श्याम श्याम श्याम श्याम श्याम नाम जपई,
छार तनु करिवो बिनाश॥

[भावार्थ— हे सखी, यह जीने-मरने का कैसा विधान है! सखी, ब्रजकिशोर कहाँ भाग गए हैं। ब्रजगोपियों के तो प्राण ही निकल रहे हैं। माधव को तो सखी, सुन्दर लड़कियाँ मिल गई हैं, वे रूपविहीन गोपकन्या को भूल गए हैं। सखी, कौन जानता था रसमय रसिक ऐसे रूप के भिखारी हो जाएँगे! मैं पहले नहीं समझ पाई थी; रूप देखकर भूल गई, और हृदय में उनके युगल चरण धारण कर लिए। अब मैं यमुना-जल में सखी! शरीर डुबा दूँ या विष खा लूँ? अथवा वन की बेलों को गले में फँसा कर नए तमाल पर लटक जाऊँ? नहीं तो श्याम श्याम श्याम श्याम श्याम नाम जपते हुए शरीर छोड़कर इसका विनाश कर दूँ!]

गाना सुनकर ठाकुर और भक्तगण गुग्ध हो गए हैं। ठाकुर और राखाल के नयनों से प्रेमाश्रु गिर रहे हैं। नरेन्द्र फिर और ब्रजगोपियों के भाव में मतवाले होकर कीर्त्तन को सुर में गा रहे हैं—

तुमि आमार, आमार बँधु, कि बोलि
(कि बोलि तोमाय नाथ)।
(कि जानि कि बोलि आमि अभागिनी नारीजाति)।
तुमि हातोंकि दर्पण, माथोकि फूल
(तोमाय फूलकरे केशे परबो बँधु)।
(तोमाय कबरीर सने लुकाये लुकाये राखबो बँधु)
(श्यामफूल परिले केउ नखते नारबे)।
तुमि नयनेर अंजन बयानेर ताम्बुल
(तोमाय श्याम अंजन करे एंके परबो बँधु)
(श्याम अंजन परेछि बले केउ नखते नारबे)
तुमि अंगकि मृगमद गिमकि हार
(श्यामचन्दन माखिशीतल होबो बँधु)
तोमार हार कण्ठे पर्बो बँधु।
तुमि देहकि सर्वस्व गेहकि सार॥
पाखी को पाख मीन को पानी।
तेयसे हम बँधु तुया मानि॥

[भावार्थ— क्या कहूँ मैं नाथ तुम्हें, तुम मेरे हो, मेरे अपने बन्धु हो। मैं क्या जानूँ अभागिनी नारी जाति ? तुम हाथों के दर्पण, माथे के फूल हो, तुम्हें फूल बनाकर केशों में पहन लूँगी मेरे बन्धु ! तुम्हें खोपे (जूड़े) में खोंस कर छिपा लूँगी। श्यामफूल लगा लेने पर कोई देख भी नहीं सकेगा। तुम नयनों के अंजन हो, मुख के पान हो। तुम्हें श्याम, अंजन बनाकर आँखों में लगा लूँगी। श्याम–अंजन लगने पर कोई देख भी नहीं पाएगा। तुम अंग की मृगमद कस्तूरी हो, गले का हार हो। श्यामचन्दन का लेप करके शीतल हो जाऊँगी मेरे प्रियतम ! तुम्हारा हार कण्ठ में पहन लूँगी प्रिय ! तुम देह का सर्वस्व और गेह का सार हो। पक्षी के लिए जैसे पंख और मीन को जैसे पानी है, हे मेरे बन्धु, तुम तैसे ही मेरे लिए हो।